अर्थ के अनर्थ की कहानी इतनी लम्बी है कि यदि उसका उट्टंकन किया जाय तो पृष्ठ के पृष्ठ भर सकते हैं। — *उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि*

प्रातःकाल
चैत्र शुक्ला 1, मंगलवार, 16मार्च, 2010

डटा रहे भारत

आज भले अफगानिस्तान की सीमा भारत से नहीं मिलती हो और दोनों के बीच एक दूसरा देश पाकिस्तान मौजूद हो, एक समय था जब यह देश प्राचीन भारत के साम्राज्य का ही एक महत्वपूर्ण अंग था। प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार इसी जगह से आर्यों की संस्कृति भारत की मुख्य भूमि में फैली और बाद में बौद्धों के प्रसार का भी यह केंद्र बना। हजारों वर्ष के बाद भी जब इस उपमहाद्वीप के हालात काफी कुछ बदल गए हैं, भारत और अफगानिस्तान के संबंध मैत्री की नई ऊंचाइयों को छू रहे हैं। हालांकि, भारत से अलग होने के बाद से अफगानिस्तान की हालत बद से बदतर होती गई और यह विदेशी ताकतों की रस्साकशी का खिलौना बन कर रह गया।

ग्रेट ब्रिटेन, रूस और अमेरिका के लिए खेल का मैदान बन कर बर्बाद हुए अफगानिस्तान के लिए आज पाकिस्तान सबसे बड़ा खतरा बन चुका है। पाकिस्तान ने तालिबान के रूप में उस देश को ऐसे दैत्य के हवाले कर दिया कि आज अफगानिस्तान फिर से युद्ध का मैदान बना हुआ है। तालिबान शासन को तो वहां से उखाड़ फेंका गया है लेकिन उसकी पूंछ आज भी वहां तड़फड़ा रही है। तालिबान के हाथों बर्बाद हो चुके देश को फिर से जिंदा करने की अंतरराष्ट्रीय कोशिशें जारी हैं और इसमें भारत प्रमुख भूमिका में है। यह बात पाकिस्तान को नागवार गुजर रही है और इसमें बाधा डालने की कोई कोशिश वह छोड़ता नहीं है। इसी सिलसिले में भारतीय दूतावासों पर हमले हो चुके हैं, उन जगहों को चुन-चुन कर निशाना बनाया जा रहा है जहां अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में जुटे भारतीय रह रहे हैं। इन हमलों में पाकिस्तान की कुख्यात खुफिया एजेंसी आईएसआई का हाथ भी सामने आ चुका है। पाकिस्तान की वे तमाम कोशिशें भी दिख चुकी हैं जिनमें वह बार-बार भारत की मौजूदगी पर आंखें तरेरता रहा है। तमाम खतरे उठा कर भी भारत पड़ोसी के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुकरने को तैयार नहीं है। युद्ध से बर्बाद उस देश में स्कूल, अस्पताल, सड़कें और बिजली की सुविधा बहाल करने में भारत दो सौ करोड़ रूपये से अधिक की राशि लगा चुका है और चार हजार से अधिक भारतीय अपनी जान की बाजी लगा कर उस देश को फिर से अपने पैरों पर खड़ा करने के अभियान में जुटे हुए हैं। भारतीय लोगों की सुरक्षा में हालांकि अफगान सरकार काफी सतर्क है लेकिन उसकी अपनी सीमाएं हैं। ऐसे में भारत सरकार भी अपने सुरक्षा बलों को वहां लगा रही है। अफगानिस्तान में आज भारतीयों को देखते ही लोगों की बांछें खिल जाती हैं जबकि पाकिस्तान का नाम भी वहां के लोग सुनना नहीं चाहते। इसलिए भारत को हर खतरे उठाकर भी अफगानिस्तान की मदद में जुटा रहना चाहिए। भले इसमें कोई प्रत्यक्ष लाभ दिखाई न दे लेकिन ऐसा करके वह पाकिस्तान की आतंकी साजिशों को निष्फल करने में प्रभावी भूमिका निभा सकता है। अफगानिस्तान फिर से पाकिस्तानी आतंकियों की चारागाह न बनने पाए यह देखना भारत की प्रमुख जिम्मेदारियों में आता है। ●●●

शर्मनाक मजबूरी

बाल संरक्षण, बाल पोषण और बात-बात में बाल अधिकारों की बात करने वाले समाज में जब यह पता चलता है कि एक राज्य का गृहमंत्री बच्चों को बेचना गलत नहीं मानता, तो हैरानी होती है, पीड़ा और विस्मय होता है। हो सकता है यह बयान मंत्री की मजबूरी हो। यह शर्मनाक टिप्पणी उसकी अपनी व्यक्तिगत सोच हो। लेकिन, आज जब हम सभ्य समाज में जीने का दंभ भरते हैं तब बच्चों की खरीद-फरोख्त की खबरें सरकार की नीतियों और उसकी कानून व्यवस्था पर सवाल खड़ा करती हैं। यह कौन नहीं जानता है कि छत्तीसगढ़, उड़ीसा और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में बड़ी संख्या में बच्चों को बेगारी के लिए बेचा-खरीदा जाता है।

इस घृणित कार्य में लगे लोग पकड़े जाते हैं और सरकार की लचर नीतियों के चलते छूट जाते हैं। शायद, इसीलिए छत्तीसगढ़ जैसे राज्य के गृहमंत्री को बच्चों की खरीद-फरोख्त मामूली बात लगती है। वह शर्मनाक तरीके से बयान देते हैं कि 'अनाथालय ने यदि एक बच्ची को बेचकर बाकी बच्चों का पेट भरने का काम किया तो इसमें कुछ गलत नहीं है।' यह कथन देश में कथित अनाथालयों का सच भी दर्शाता है। इसके निहितार्थ ये भी हैं कि सरकारी अक्षमता और भ्रष्टाचार की जड़ें देश में कितनी गहरी जम चुकी हैं। हमारे राजनेताओं का कितना पतन हुआ है, उनकी भाषा कितनी पतित हुई है और वे कितने शर्मनाक तरीके से अभद्र हुए हैं, यह बयान उसकी बानगी भर है। न केवल छत्तीसगढ़ बल्कि देश के सभी राज्यों में बाल संरक्षण गृहों, अनाथालयों और संवासिनी गृहों में रह रहे लोग पशुवत जीवन जीने को अभिशप्त हैं। यहां बच्चों से अनैतिक व घृणित कार्य करवाए जाते हैं। संवासिनी गृहों में रहने वाली लड़कियों-महिलाओं से वेश्यावृत्ति करवाया जाना आम है। बेगारी, भूखे पेट सोना और ऊपर से आश्रम संचालकों की मार इनकी नियति है। समाज कल्याण विभाग अनाथालयों को न तो पर्याप्त फंड देता है और न यहां रहने वालों को समुचित कानूनी संरक्षण। शायद इसीलिए इनके संचालक निरंकुश व्यवहार करते हैं। विदेशों में बालगृहों व पुनर्वास केंद्रों के लिए सख्त कानून हैं। समाज कल्याण की पहली प्राथमिकता हैं बच्चे, वृद्ध और अशक्त लेकिन, सरकारें इस तरफ संजीदा नहीं हैं। एक तरफ देश के हर बच्चे को अनिवार्य शिक्षा की गारंटी का कानून बनाया जा रहा है तो दूसरी तरफ एक बच्ची अपने अन्य साथियों की उदरपूर्ति के लिए अपनी जिंदगी तबाह कर रही है। यह कैसा विकास है, कैसा समाज कल्याण है ! हमारी सरकारें इस शर्मनाक मजबूरी को क्या देख-सुन रही हैं। समाज के इस सत्य से आखिर हम कब रू-ब-रू होंगे। ●●●

एमएफ हुसैन का पलायन

पिछले सप्ताह एक अखबार में एक कार्टून प्रकाशित हुआ था, जिसमें काले बुर्के में तस्वीर थी। इसके नीचे लिखा था- 'कतर माता'। तस्वीर के रचियता का नाम लिखा था एमएफ हुसैन। भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्रकार द्वारा भारत की नागरिकता त्याग कर कतर की नागरिकता लेने की प्रत्यक्ष मूढ़ता ने उनके बहुत से कट्टर समर्थकों को भी निराश कर दिया है। हुसैन कहते हैं कि कतर में कोई भी मेरी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नियंत्रित नहीं कर सकता। 'मेरी मातृभूमि' की ओर से इसलिए पीठ फेर कर कि भारत को मेरी जरूरत नहीं है और कोई भी मुझसे बात करने के लिए आगे नहीं बढ़ा, हुसैन ने उन लोगों को जीत सौंप दी जो महसूस करते हैं कि अभिव्यिक्ति की स्वतंत्रता का मतलब दूसरों को कष्ट पहुंचाने का अधिकार नहीं है। हुसैन ने भारत को अमीरात के लिए त्याग दिया जो इस्लामिक, कट्टरपंथी राष्ट्र है और दूर-दूर तक लोकतंत्र के लिए अर्हता नहीं रखता। इससे समस्या और जटिल हो गई है। राजनीतिक कुशाग्रता के अभाव के कारण हुसैन ने नासमझी से उत्पीड़कों की सूची में एक और विरोधी जोड़ लिया है- भारतीय राष्ट्रीयता। इस नए विवाद के कारण हुसैन की पेंटिंगों की कीमत तो कम नहीं होगी, किंतु यह संभव है कि भारत में उनकी पेंटिंग एग्जिबिशन पर अगले हमले से रोष के बजाए अलगाव की भावना उभरे। असहिष्णु लोकतंत्र के ध्वजारोहक हुसैन की हुलकारते हुए पहले ही अपने विकृत निष्कर्षों पर पहुंच गए हैं। पिछले सप्ताह कर्नाटक के एक स्थानीय अखबार में बांग्लादेशी लेखिका तस्लीमा नसरीन के बुर्के पर चोट करने वाला एक लेख प्रकाशित होने के बाद उग्रवादी मुसलमानों ने हिंसक प्रदर्शन किया। यह आउटलुक पत्रिका में तीन साल पहले छपे एक लेख का अनधिकृत कन्नड अनुवाद है। कर्नाटक सरकार ने इसे भड़काऊ घोषित किया और अखबार को इसके प्रकाशन पर माफी मांगनी पड़ी। वाम मोर्चा सरकार की ही तरह, जिसने सांप्रदायिक गुंडागर्दी के विस्फोट के बाद तस्लीमा को कोलकाता से बाहर का रास्ता दिखा दिया था, कर्नाटक सरकार ने भी जरा भी प्रतिरोध न दिखाना उचित समझा। इसने असहिष्णुओं के सामने आत्मसमर्पण कर शांति खरीद ली।

मीडिया के परिप्रेक्ष्य में बुर्के के विरोध में तस्लीमा के लेख के पुनर्प्रकाशन में कुछ भी गलत नहीं है। पिछले कुछ महीनों के दौरान फ्रांस में बुर्का सहित तमाम बाह्य पंथिक प्रतीकों के धारण पर लगे प्रतिबंध पर वैश्विक बहस छिड़ी थी। पिछले महीने, भारत में चुनाव आयोग ने सुप्रीम कोर्ट को सूचित किया था कि बुर्का एक पंथिक परंपरा है न कि इस्लाम का एकीकृत अंग और इसलिए अगर मुस्लिम महिलाएं वोट के लिए नामांकन चाहती हैं तो उन्हें अपना फोटो खिंचवाना पड़ेगा। विशुद्ध पत्रकारिता परिप्रेक्ष्य में इस्लामिक

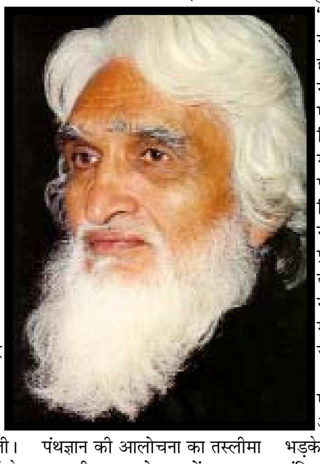

पंथज्ञान की आलोचना का तस्लीमा का स्त्रीवाद अपने पाठकों तक

स्वप्न दासगुप्ता

पहुंचा कर कन्नड प्रभा जानबूझ कर भड़काऊ काम नहीं कर रहा था। यह मुद्दा सामयिक है। एकमात्र चूक कॉपीराइट के उल्लंघन की हुई है। यह ऐसा जुर्म नहीं है जिस पर भीड़ दंगे-फसाद पर उतर आए। लगता है कि मुद्दा यह नहीं था कि तस्लीमा ने अपने लेख में प्रकट विचारों में इस्लाम पंथ को समझने में कोई भूल की है। पिछले सप्ताह एक टीवी कार्यक्रम में मजलिसे-इत्तेहादुल-मुस्लमीन सांसद असादुद्दीन ओवेसी तस्लीमा की 'ईश निंदा' पर आगबबूला हो गए थे और उनके भारत में होने के अधिकार पर ही सवाल उठा दिया था। एमआईएम ने हैदराबाद में जिस तरह तस्लीमा की सभा में हंगामा मचाने और तस्लीमा पर हमला करने का प्रयास किया, उसी तरह इन घटनाओं से सरकार को यह जताने का प्रयास किया गया कि तस्लीमा की शरणार्थी की अर्जी पर सहानुभूतिपूर्ण विचार से मुसलमानों का गुस्सा भड़क जाएगा।

हुसैन की पेंटिंग एग्जिबिशन में तोड़फोड़ करने और तस्लीमा के खिलाफ भड़के गुस्से में अद्भुत समानता है। पंथिक निगरानीबाजों को भड़काने में हुसैन की तथाकथित 'अश्लील' और 'अपमानजनक' पेंटिंगों की ही जरूरत नहीं है, उनकी अन्य पेंटिंगों को भी आपत्तिजनक मान लिया गया है। न ही तस्लीमा को एक नया विवाद खड़ा करने की जरूरत है। मुझे बताया गया है कि इस साल कोलकाता पुस्तक मेले में उनकी गैर-वर्जित पुस्तक को भी अनुमति नहीं दी गई। संदेश स्पष्ट है- तस्लीमा और हुसैन किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं हैं। सलमान रूश्दी की भी यही दशा हुई है। सैटेनिक वर्सेज पर राजीव गांधी सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। इस फैसले के कारण घटनाओं की पूरी श्रृंखला बन गई थी, जिसमें आयातुल्ला खुमैनी का रूश्दी की मौत का फतवा भी शामिल था। उन्हें 12 साल तक भारत का वीजा नहीं दिया गया क्योंकि सरकार को यह डर सता रहा था कि उनकी उपस्थिति मात्र से भारत में हिंसा भड़क सकती है। सालों से तमाम सरकारें दलील देती रही हैं कि भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रा पर रोक नहीं है किंतु इसे नैतिकता और व्यवस्था के दायरे में रहना होगा। संक्षेप में, उल्लंघन का कोई स्वत: अधिकार नहीं है। भारत में पंथनिरपेक्षवाद का मतलब धर्म से वास्ता न रखना नहीं है, बल्कि सभी पंथों का आदर करना है।

हुसैन और तस्लीमा विरोधी प्रदर्शन की सफलता को प्रबुद्ध सार्वजनिक स्थान की सिकुड़न के रूप में देखा जाना चाहिए। भारत का मानना है कि अपनी साफ्ट पावर के बल पर वह विश्व खिलाड़ी बन जाएगा। आज विरोधी तंगदिलों के टकराव से इस शक्ति में ह्रास हो रहा है। हदों को तोड़ती हुई नासमझी खतरनाक ऊंचाइयां छू चुकी है। यह समय है कि देश लोकतांत्रिक अधिकारों का विस्तार उन लोगों तक करे, जो नाजुक संवेदनशीलता को चोट पहुंचा रहे हैं। ●●●

जरदारी और नवाज के अपने-अपने दावे

पाकिस्तान में सत्तारूढ़ पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के मुखिया व पाक राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी और सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी मुस्लिम लीग (नवाज) के मुखिया नवाज शरीफ एक बार फिर आमने-सामने हैं। दोनों लोकतंत्र को मजबूत करने की जंग लड़ने के दावे कर रहे हैं। जबकि मुस्लमान लीग (क्यू) के वरिष्ठ नेता मुशाहिद हुसैन का कहना है कि खुद को लोकतंत्र का चैम्पियन कहने वाले ही लोकतंत्र के लिए खतरा बन चुके हैं। इन दोनों का टकराव एक बार फिर उस समय सामने आया जब राष्ट्रपति जरदारी द्वारा दो न्यायाधीशों की नियुक्ति के आदेश के बाद न्यायपालिका और सरकार के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो गई। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इफ्तिखार चौधरी से बिना सलाह मशवरा किये राष्ट्रपति द्वारा जजों की नियुक्ति के विरोध में वकीलों का प्रदर्शन और आन्दोलन जोर पकड़ गया। मुस्लिम लीग (नवाज) ने भी इन नियुक्तियों को गैर-संवैधानिक करार देते हुए इसे संविधान के अनुच्छेद १७७ का उल्लंघन बताया जबकि पीपीपी ने इस संकट का ठीकरा मुख्य न्यायाधीश के माथे फोड़ा।

नवाज शरीफ ने भी जजों की नियुक्ति का विरोध करते हुए मांग की कि सरकार संविधान और

कानून के पालन को यकीनी बनाए और लोकतांत्रिक प्रतिष्ठानों के साथ टकराव का रास्ता बन्द करे। मेल-मिलाप अध्यादेश (एनआरओ) के फैसले पर अमल करे। इस मुद्दे पर देशभर में दोनों पार्टियों के कार्यकर्ताओं ने जबरदस्त विरोध प्रकट किया। सिन्ध में जहां नवाज शरीफ के सबसे ज्यादा पुतले फूंके गए, वहीं पंजाब में अधिकांशत: जरदारी के पुतले जलाए गए। इस संगीन सूरतेहाल को देखते हुए अटकलें लगाई जा रही थी कि जरदारी देश में आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं। आखिरकार सरकार को टकराव टालने के लिए दो जजों की नियुक्ति का नया अध्यादेश जारी करना पड़ा जिसके कारण जरदारी द्वारा जारी किया गया अध्यादेश निष्प्रभावी हो गया।

जरदारी का न्यायपालिका से

कुलदीप तलवार

नया टकराव फिलहाल खत्म हो गया है, लेकिन असल मुद्दा अब भी बना हुआ है कि क्या जरदारी राष्ट्रपति रहते मुख्य न्यायाधीश चौधरी से मुकाबला करते रहेंगे। दुनिया जानती है कि पिछले दो सालों में जरदारी को आखिरकार अपने कई एकतरफा फैसले वापस लेने पड़े। जैसे मुशर्रफ द्वारा ६० बर्खास्त जजों की बहाली। इनमें चौधरी भी शामिल थे। देश में वकीलों की संस्थाओं व विपक्षी पार्टियों ने जब सरकार के खिलाफ जोरदार प्रदर्शन किया और अन्तत: जरदारी को इन जजों को प्रशासनिक ऑर्डर देकर बहाल करना पड़ा जबकि वह पहले कहते थे कि इनकी बहाली संवैधानिक पैकेज के बिना संभव नहीं। इससे उनकी खासी छीछालेदर हुई । ऐसे ही सर्वोच्च न्यायालय ने जब मेल-मिलाप अध्यादेश (एनआरओ) रद्द किया और जरदारी व अन्य को भ्रष्टाचार के मामलों में एनआरओ के तहत दी गई आम माफी खारिज कर दी तब तीखी प्रतिक्रिया हुई। जरदारी का आरोप था कि पाक में लोकतंत्र व पीपी पार्टी के खिलाफ साजिशें चल रही है। जबकि उनका मकसद लोकतंत्र मजबूत करना है। अगर किसी ने लोकतंत्र की तरफ मैली निगाह से देखने की कोशिश की तो वह उसकी आंखें निकाल लेंगे। उनका इशारा सर्वोच्च न्यायालय, नवाज शरीफ व मीडिया की तरफ था। इस बयान के बाद लोगों के मन में उन्हें लेकर बहुत ही कमजोर राष्ट्रपति की छवि उभरी। जरदारी मई २००६ में लन्दन में नवाज शरीफ व बेनजीर भुट्टो के बीच हुए चार्टर आफ डेमोक्रेसी पर पूरा अमल नहीं करा रहे। इसमें मुशर्रफ द्वारा संविधान में किया गया १७वां संशोधन खत्म करने की बात है जिसके तहत राष्ट्रपति को संसद भंग करने का अधिकार हासिल है। इस संशोधन में यह भी शामिल किया गया था कि कोई भी शख्स तीसरी बार प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। सरकार को कायम हुए क्योंकि दो साल हो गए हैं, अत: अब तक इसको खत्म कर दिया जाना चाहिए था। संविधान की असली शक्ल बहाल कर दी जाती और अधिकार संसद के हवाले कर दिये जाते। आम ख्याल यह है कि जरदारी इस संशोधन को खत्म नहीं करना चाहते क्योंकि इससे उनके विशेष अधिकार खत्म हो जाते हैं। जबकि नवाज शरीफ इसे खत्म करने के लिए दबाव बनाए हुए हैं।

यही कहा जा सकता है सत्ताधारी पीपी पार्टी या मुस्लिम लीग (नवाज) दोनों लोकतंत्र के झूठे वादे कर रही हैं । दोनों अपने-अपने हितों के लिए राष्ट्रीय हितों को नजरन्दाज कर रही हैं। न्यायपालिका व कार्यपालिका में जारी टकराव देशहित में नहीं है और लोकतंत्र कमजोर हो रहा है। पड़ोसी होने के नाते भारत पाक में मजबूत लोकतंत्र चाहता है। वरना इसका प्रतिकूल असर भारत पर भी पड़ेगा। देखना यह है कि आगामी दिनों में पाक की राजनीति क्या शक्ल लेती है। ●●●

बदलाव की कवायद

अपने सूबे की कानून-व्यवस्था में सुधार को लेकर गंभीर दिख रहे हैं मुख्यमंत्री अशोक गहलोत। पुलिस के निकम्मेपन से चिंतित है गहलोत।

तभी तो पुलिस आयुक्त प्रणाली लागू करने की सोची है। जयपुर और जोधपुर के लिए तो बाकायदा एलान भी कर दिया है। कहने को अंतरराष्ट्रीय पर्यटन नगरी है जयपुर। लेकिन पिंक सिटी में अपराध के बढ़ते ग्राफ ने बदनामी कराई है राज्य सरकार की। बजट सत्र में गहलोत ने जयपुर और जोधपुर के लिए पुलिस आयुक्तों की व्यवस्था और उन्हें ज्यादा अधिकार देने की बात कह कर आलोचकों को चुप करने की कोशिश की। मातहत पुलिसवालों पर लगाम कस सकेंगे आयुक्त। सियासी दबाव भी ज्यादा प्रभावी नहीं होते इस प्रणाली में। आज तो हालत यह है कि जयपुर और जोधपुर में तो सिपाही से लेकर आईजी तक हर खाकीधारी का अपना-अपना पव्वा सियासी हलकों में फिट है। नई व्यवस्था अभी लागू हुई नहीं कि आईजी रैंक के पुलिस अफसर जरूर सक्रिय हो गए हैं। आयुक्त बनने की चाहत रखने वालों के लिए तो यह किस दर्जे का अफसर बनाया जाएगा। आयुक्त। मुख्यमंत्री की मंशा जरूर आईजी को यह ओहदा देने की है। फिलहाल तो जयपुर के लिए नई आर्ठजी की तलायश जारी जहै। हो सकता है। कि बाद में इसी को बना दिया जाए आयुक्त। पर शुरूआत में वाहवाही लूटना है सरकार का इरादा।

सो जयपुर के मामले में छवि अहम होगी नए अफसर की। सूबे के पुलिस महानिदेशक हरीशचंद मीणा टोह रहे हैं काबिल अफसर को। जो नाम जेजन में हैं, उनमें गुणों के आधार पर तुलना भी कर रहे हैं। वैसे जानकारों की राय तो यही है कि खुद गहलोत को अफसरों की क्षमता परखने में महारथ हासिल है, लिहाजा परेशानी का कोई सवाल ही नहीं उठता।

पति परमेश्वर

राबड़ी देवी ने दिखा दिया कि वे आंख मूंद कर पति के साथ हैं। महिला होते हुए भी महिला आरक्षण के मामले में पति के कदम से कदम मिला कर चलती नजर आई राबड़ी। दिल्ली में लालू इस विधेयक के विरोध में आसमान सिर पर उठाए थे तो पटना में राबड़ी देवी उनके संघर्ष को गति दे रही थी। लालू ने कह दिया था कि हमारा समाज पुरूष प्रधान है। लिहाजा उनकी पत्नी उन्हीं की बात मानेंगी। वे जिस पार्टी के लिए कहेंगे, उसी के पक्ष में मतदान करेंगी राबड़ी। मीडिया ने खूब उकसाया राबड़ी को। पर वे पति के बयान का अंधसमर्थन ही करती रही। पति की बात अखरी नहीं उनको। और तो और सोनिया गांधी तक ने लोकसभा में लालू यादव को चिढ़ाया। मजाक में कहा कि उन्हें राबड़ी से बात करनी पड़ेगी।

उन्हें सोचना चाहिए कि उनके घर में सात बेटियां हैं। फिर क्यों वे महिलाओं को सत्ता में भागीदारी के कदम का विरोध कर रहे हैं। लालू इस तरह की नसीहत से भला क्यों पसीजते। वे अपनी बात पर अड़े रहे। हालांकि कुछ सवालों के जवाब देने में उन्हें पसीना जरूर छूटेगा। मसलन, पिछड़ी महिलाओं के लिए चिंता तो जता रहे हैं पर चुनाव में पार्टी टिकट बांटते वक्त उनका ध्यान क्यों नहीं रखा। चुनिंदा महिलाओं को ही टिकट दिए। अपनी पत्नी को अपनी जगह मुख्यमंत्री बनवाना महिलाओं का हितैषी होना कतई नहीं माना जा सकता। पिछड़े तबके की महिलाओं को हकीकत का अहसास तो जरूर रहा होगा।

सुलगता असंतोष

राजस्थान में कांग्रेस और भाजपा अब हमराह नजर आ रहे हैं। महिला आरक्षण के सवाल पर सहमति यों केन्द्र में बनी है दोनों दलों के बीच। पर असर इस नए समीकरण का राजस्थान में भी नजर आने लगा है। एक-दूसरे का अनुसरण कर रहे हैं दोनों दल। भाजपा विधायकों में फूट जगजाहिर रही है। कांग्रेस को भी सत्ता में आए सवा साल तो हो ही गया है। सो उसके विधायक भी बेचैन हैं। जो सत्ता का सुख नहीं भोग पा रहे हैं, वे अब खुल कर अपने मन का गुबार निकाल रहे हैं। कुछ तो दिल्ली तक अपनी हुंकार भर आए। नाराज कांग्रेसी विधायकों की पीड़ा विधानसभा में भी साफ दिखी। बजट सत्र में में कांग्रेस के विधायकों का हरावल दस्ता मौन साधे हैं। विपक्षी बार सह रहे अपने मंत्रियाकें की ढाल बनने मेंइस खेमेको अब कोई दिलचस्पी नहीं। भ्रष्टाचार में घिरे मंत्रियों को ज्यादा तकलीफ हुई है इस बदलाव से। परेशानी बढ़ी तो मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के दरबार में लगानी पड़ी गुहार। सदन में फ्लोर प्रबंधन की कसावट की सलाह दे आए। भूल गए कि खुद मुख्यमंत्री ही सारे मंत्रियों के आचरण से खुश कहा है। मुख्यमंत्री ने तो उलटे मंत्रियों को ही नसीहत दे डाली। असंतुष्टविधायकों को तवज्जों देने की फटकारनुमा सलाह के बाद ही विधायकों को सदन में अपने मंत्रियों के बचाव के लिए समझाया उन्होंने।

आसान नहीं डगर

हुड्डा के माथे की शिकन बढ़ गई हैं। आने वाला वक्त मुश्किलें बढ़ा सकता है हरियाणा के मुख्यमंत्री की। परिस्थितियां तो हैं भी प्रतिकूल। विरोधी तो दूर विधानसभा में अपनों ने ही कर ली उनके मंत्रियों की घेरेबंदी। किरण चौधरी ने कोई लिहाज नहीं की मंत्रियों की। दस जनपथ से निकटता तो है ही किरण की। सो मंत्री कयास लगा रहे हैं कि किरण चौधरी कोई खिचड़ी पका जरूरत रही होंगी। भूपिंदर सिंह हुड्डा के लिए तो यों भी सियासी तौर पर कुछ ज्यादा ही मुश्किल है यह वक्त। उनके विरोध में तो इनेलोद और भाजपा के सुर भी मिल गए हैं। वैसे विरोधी हैं एक-दूसरे की ये दोनों पर्टियां । बदले समीकरण की कोई काट नजर नहीं आ रही हैं अभी तो हुड्डा को।

वाई से एम का नाता

अपनी खोई जमीन को वापस पाने के लिए आजकल हर मुमकिन जतन कर रहे हैं लालू यादव। मुद्दे तलाशने की फिराक उसी का नतीजा है। संयोग सुखद रहा है और पिछले कुछ दिनों में उन्हें कोई न कोई मुद्दा मिलता भी रहा है। मसलन, पिछले दिनों महंगाई का मुददा उठाया था। बिहार में इस मुददे पर आंदोलन की पहल उनहीं के खाते में दर्ज हुई। बिहार बंद एक हद तक सफल भी रहा। इसके बाद महिला आरक्षण का मुद्दा मिल गया। पूरी ताकत से यह साबित करने में जुटे हैं लालू कि उनहें पिछड़ी और मुसलमान महिलाओं के हक की पूरी चिंता है। उनके हक की लड़ाई लड़ने के लिए कांग्रेस से पंगा भी लेने में पीछे नहीं रहे। पहले से ही यह एलान भी कर दिया कि आरक्षण विधेयक अगर संसद के दोनों सदनों से पास भी हो गया तो भी उनकी लड़ाई थमेगी नही। वे आंदोलन जारी रखेंगे। बिहार में विधानसभा चुनाव के अपने यादव-मुसलमान समीकरण को अब लालू नए रूप में परिभाषित करने में जुटे हैं। उनके जुझारू तेवरों का असर भी हुआ है। तभी तो नाराजगी में उनसे रूठ गए कई यादव नेता फिर करीब आए हैं। मंडलवादियों में किसी नए समीकरण की संभावना के तौर पर देख रहे हैं इसे सियासत के जानकार।

मंजे खिलाड़ी

नीतीश कुमार एक बार जो ठान लेते है, फिर कदम नहीं खींचते। अपने इस मिजाज के बारे में डंके की चोट पर कहते भी हैं। नीति-रणनीति, सिद्धान्त और मान-सम्मान को तरजीह देते हैं। तभी तो किसी के साथ आसानी से समझौता नहीं कर पाते। जिसे उनकी नीतियां रास आएं, ये साथ रहें, अन्यथा नाखुश साथ्ज्ञ छोड़ जाएं। महिला आरक्ष्पण के सवाल पर इसे फिर साबित किया है बिहार के मुख्यमंत्री ने। उनकी पार्टी के ज्यादातर नेता इस आरक्षण के खिलाफ हैं। पर नीतीश की कोई चिंता नहीं उन्होंने बेबाकी से कह दिया कि आरक्षण विधेयक पास होना चाहिए। वे पार्टी में अपने फैसले से असहमति रखने वालों की ज्यादा चिंता नहीं कर रहे। अलबत्ता मान रहे हैं कि आधी आबादी के लिए उनहोंने जो कुछ किया है, उसका कुछ तो प्रतिफल मिलेगा ही। महिलाओं को सियासत और सत्ता में हिस्सेदारी देने के लिऐ खुद भी कई अहम फैसले किए हैं। पहले किसी मुख्यमंत्री ने नहीं किए थे। वैसे फैसले। शहरी निकायों और पंचायतों में महिलाओं को ३३ की जगह ५० फीसद आरक्षण दियाहै। सूबे में नीतीश ने। तमाम जातियों और वार्गों को खुश अलग कर दिया। उनके विरोधी अपने मंडलवादी होने का ढिंढ़ोरा पीट रहे ळ्ळैं। पर नीतीश भी यह लगातार जता हरे जहैं कि वे किसी भी मंडलवादी से कम नहीं है। मंडल का खयाल भी रखा है और आधी आबादी के साथ भी है।

पिछड़ीमहिलाओं के लिए बिहार में अलग आरक्षण कोटा है। शहरी निकायों और पंचायतों में। वे तो ३३ की जगह ५० फीसद आरक्षण की हिमायत कर रहे हैं। साथ ही यह भी बता रहे हैं कि जो उन्होंने शहरी निकायों और पंचायतों में किया है, विधायिका और लोकसभाक` लिए भी इससे बेहतर कोई फार्मूला हो ही नहीं सकता। परिवारवाद को नापसंद करने की अपनी इच्छा से वापस नहीं हुए। नीतीश। हालांकि उपचुनाव में पार्टी के नेताओं के परिवारजनों को उम्मीदवार नहीं बनाने का पार्टी में भी विरोध हुआ और और हार का मुंह भी देखनास पड़ा। करारा झटका लगने के बाद भी झुके नहीं नीतीश। वे अभी भी अपने रूख पर कायम हैं। महिलाओं को विधायिकामें आरक्षण देने का भी नफा हो या नुकसान, नीतीश.... ●●●